

## Chapter ग्यारह

### भगवान् रामचन्द्र का विश्व पर राज्य करना

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् रामचन्द्र किस तरह अपने छोटे भाइयों सहित अयोध्या में रहे और उन्होंने किस तरह विभिन्न यज्ञों को सम्पन्न किया।

भगवान् रामचन्द्र ने अपनी पूजा करने वाले अनेक यज्ञ सम्पन्न किये और इन यज्ञों के अन्त में उन्होंने होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा पुरोहितों को दान में भूमि दी। उन्होंने उन्हें क्रमशः पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी दिशाएँ दे दीं और जो शेष रहा उसे आचार्य को दे दिया। सभी ब्राह्मणों ने भगवान् राम की ब्राह्मणों में श्रद्धा तथा अपने दासों के प्रति उनके वात्सल्य को देखा; अतएव उन्होंने भगवान् की स्तुति की और जो कुछ भी दान में उनसे लिया था उसे लौटा दिया। उन्होंने भगवान् द्वारा दिये गये ज्ञान को हृदय से स्वीकार किया तथा उसे ही पर्याप्त दान समझा। तब भगवान् सामान्य पुरुष का वेश बनाकर अपने प्रति लोगों की धारणा जानने के उद्देश्य से अपनी राजधानी में घूमने लगे। अकस्मात् एक रात उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी से बातें करते सुना जो पराये पुरुष के घर गई थी। उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को डाँटते हुए सीतादेवी के चरित्र पर सन्देह व्यक्त किया। भगवान् तुरन्त ही घर लौट आये और ऐसे लोकापवादों से डरकर उन्होंने सीतादेवी का संग ऊपरी मन से त्यागने का निश्चय किया। इस तरह उन्होंने सीतादेवी को वनवास दे दिया। वे गर्भिणी थीं अतएव उन्होंने वाल्मीकि मुनि के आश्रम में शरण ली जहाँ उनके जुड़वाँ पुत्र लव तथा कुश उत्पन्न हुए। अयोध्या में लक्ष्मण के दो पुत्र उत्पन्न हुए—अंगद तथा चित्रकेतु। इसी तरह भरत के तक्ष तथा पुष्कल और शत्रुघ्न के भी दो पुत्र सुबाहु तथा श्रुतसेन उत्पन्न हुए। जब भगवान् रामचन्द्र की ओर से भरत विभिन्न देशों पर विजय प्राप्त करने के लिए गये तो वे लाखों गन्धर्वों से लड़े। उन्हें युद्ध में मारकर उन्होंने अपार सम्पत्ति प्राप्त की जिसे वे घर ले आये। शत्रुघ्न ने मधुवन में लवण नामक असुर को मारा और मथुरा को राजधानी बनाया। तभी सीतादेवी अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि के संरक्षण में छोड़कर पृथ्वी में समा गईं। यह समाचार पाकर रामचन्द्रजी अत्यन्त दुखी हुए और उन्होंने तेरह हजार वर्षों तक यज्ञ किया। इस तरह शुकदेव गोस्वामी भगवान् रामचन्द्र के तिरोधान की लीला का वर्णन करके और यह सिद्ध करके कि भगवान् केवल अपनी लीलाओं के लिए प्रकट होते हैं इस अध्याय का समापन रामचन्द्र के

कार्यकलापों के सुनने का फल बताकर और भगवान् के द्वारा प्रजा की रक्षा तथा अपने भाइयों के प्रति प्रेम-प्रदर्शन के वर्णन से करते हैं।

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।

सर्वदेवमयं देवमीजेऽथाचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवान्—भगवान्; आत्मना—अपने आप; आत्मानम्—स्वयं को; रामः—रामचन्द्र; उत्तम-कल्पकैः—अत्यन्त श्रेष्ठ साज-सामान से; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं के आत्मा स्वरूप; देवम्—भगवान् ने स्वयं की; ईजे—पूजा की; अथ—इस प्रकार; आचार्यवान्—आचार्यों के मार्गदर्शन में; मखैः—यज्ञों को सम्पन्न करके।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने एक आचार्य स्वीकार करके श्रेष्ठ साज समान सहित बड़ी धूमधाम से यज्ञ सम्पन्न किये। इस तरह उन्होंने स्वयं ही अपनी पूजा की क्योंकि वे सभी देवताओं के परमेश्वर हैं।

तात्पर्य : *सर्वार्हणम् अच्युतेज्या*—यदि अच्युत पूजे जाते हैं तो हर एक की पूजा हो जाती है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में (४.३१.१४) में कहा गया है—

*यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।*

*प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥*

“जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से तना, डालें तथा पत्तियों को जीवनदान मिलता है और जिस तरह उदर को भोजन देने से शरीर की इन्द्रियाँ तथा अंग-प्रत्यंग जीवित रहते हैं उसी प्रकार भगवान् की पूजा से भगवान् के अंश रूप देवता प्रसन्न होते हैं।” यज्ञ सम्पन्न करने का अर्थ है भगवान् की पूजा करना। यहाँ पर भगवान् ने भगवान् की पूजा की। अतएव कहा गया है— *भगवान् आत्मनात्मानम् ईजे*—भगवान् ने अपने द्वारा अपनी पूजा की। किन्तु इससे इस मायावाद दर्शन की पुष्टि नहीं होती जिसके अनुसार मनुष्य अपने को भगवान् मानता है। जीव भगवान् से सदैव भिन्न होता है। विभिन्नांश कभी भी भगवान् नहीं होते यद्यपि कभी-कभी मायावादी भगवान् द्वारा की गई अपनी पूजा का अनुकरण करते हैं। भगवान् कृष्ण हर प्रातः गृहस्थ के रूप में अपने आप का ध्यान करते थे और इसी तरह भगवान् रामचन्द्र ने स्वयं को तुष्ट करने के लिए यज्ञ सम्पन्न किये। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि सामान्य व्यक्ति *अहंग्रह उपासना* विधि के

अनुसार भगवान् का अनुकरण करे। यहाँ पर ऐसी अवैध पूजा की संस्तुति नहीं की गई।

होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ।

अध्वर्यवे प्रतीचीं वा उत्तरां सामगाय सः ॥ २ ॥

**शब्दार्थ**

होत्रे—आहुति डालने वाले, होता पुरोहित को; अददात्—दे डाला; दिशम्—दिशा; प्राचीम्—समस्त पूर्व दिशा; ब्रह्मणे—ब्रह्मा पुरोहित को, जो यज्ञशाला में होने वाले कृत्यों का निरीक्षण करता है; दक्षिणाम्—दक्षिण दिशा; प्रभुः—भगवान् रामचन्द्र ने; अध्वर्यवे—अध्वर्यु पुरोहित को; प्रतीचीम्—पश्चिम दिशा; वा—भी; उत्तराम्—उत्तर दिशा; साम-गाय—उद्गाता पुरोहित को जो सामवेद का गान करता है; सः—उन्होंने ( रामचन्द्र ने )।

भगवान् रामचन्द्र ने होता पुरोहित को सम्पूर्ण पूर्व दिशा, ब्रह्मा पुरोहित को सम्पूर्ण दक्षिण दिशा, अध्वर्यु पुरोहित को पश्चिम दिशा और सामवेद के गायक उद्गाता पुरोहित को उत्तर दिशा दे दी। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा साम्राज्य दे डाला।

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ।

मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**

आचार्याय—आचार्य या गुरु को; ददौ—दे डाला; शेषाम्—शेष बची हुई; यावती—जो भी; भूः—पृथ्वी; तत्-अन्तरा—चारों दिशाओं के बीच में स्थित; मन्यमानः—सोचते हुए; इदम्—यह सब; कृत्स्नम्—पूर्णतया; ब्राह्मणः—ब्राह्मणजन; अर्हति—पाने के योग्य हैं; निःस्पृहः—इच्छा न रखने वाले।

तत्पश्चात् यह सोचकर कि ब्राह्मण लोग निष्काम होते हैं अतएव उन्हें ही सारे जगत का स्वामी होना चाहिए, भगवान् रामचन्द्र ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण के बीच की भूमि आचार्य को दे दी।

इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः ।

तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**

इति—इस तरह से ( ब्राह्मणों को सर्वस्व देने के बाद ); अयम्—भगवान् रामचन्द्र; तत्—उनके; अलङ्कार-वासोभ्याम्—अपने निजी आभूषणों तथा वस्त्रों सहित; अवशेषितः—शेष; तथा—और; राज्ञी—रानी ( सीतादेवी ); अपि—भी; वैदेही—राजा विदेह की पुत्री; सौमङ्गल्या—केवल नथुनी से युक्त; अवशेषिता—शेष रही।

ब्राह्मणों को सर्वस्व दान देने के बाद भगवान् रामचन्द्र के पास केवल उनके निजी वस्त्र तथा आभूषण बचे रहे और इसी तरह रानी सीतादेवी के पास उनकी नथुनी के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं

रहा।

ते तु ब्राह्मणदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।

प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्ष्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

ते—वे होता, ब्रह्मा तथा अन्य पुरोहित; तु—लेकिन; ब्राह्मण-देवस्य—ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रेम करने वाले भगवान् रामचन्द्र का; वात्सल्यम्—पितृतुल्य स्नेह; वीक्ष्य—देखकर; संस्तुतम्—स्तुति की; प्रीताः—प्रसन्न होकर; क्लिन्न-धियः—द्रवित हृदय वाले; तस्मै—उनको ( रामचन्द्रजी को ); प्रत्यर्ष्ये—लौटाते हुए; इदम्—यह प्राप्त हुई सारी भूमि; बभाषिरे—बोले।

यज्ञकार्य में संलग्न सारे ब्राह्मण भगवान् रामचन्द्र से अत्यधिक प्रसन्न हुए क्योंकि वे ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त वत्सल एवं अनुकूल थे। अतः उन्होंने द्रवित होकर दान में प्राप्त सारी सम्पत्ति उन्हें लौटा दी और इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि प्रजा दृढ़ता के साथ वर्णाश्रम धर्म का पालन करती थी। ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों की भाँति ठीक तरह से कर्म करते थे और क्षत्रियजन बिल्कुल क्षत्रियों की तरह, इत्यादि। अतएव जब भगवान् रामचन्द्र ने ब्राह्मणों को दान में अपना सर्वस्व दे डाला तो योग्य तथा चतुर ब्राह्मणों ने विचार किया कि ब्राह्मण समुदाय सम्पत्ति प्राप्त करके उससे लाभ कमाने के लिए नहीं बना है। ब्राह्मणों के गुण भगवद्गीता (१८.४२) में दिये गये हैं—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

“शान्त स्वभाव, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धता, सहनशीलता, ईमानदारी, ज्ञान, बुद्धिमत्ता तथा धार्मिकता—ये गुण हैं जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्म करते हैं।” ब्राह्मणों के चरित्र में भूस्वामी बनने तथा प्रजा पर शासन करने के लिए कोई गुंजायश नहीं है—ये तो क्षत्रियों के कर्म हैं। अतएव भले ही ब्राह्मणों ने भगवान् रामचन्द्र द्वारा प्रदत्त दान को अस्वीकार न किया हो, किन्तु स्वीकार करने के बाद उन्होंने उसे राजा को लौटा दिया। ब्राह्मण समुदाय अपने प्रति भगवान् के वात्सल्य से इतना प्रसन्न था कि उनके हृदय द्रवित हो उठे। उन्होंने देखा कि श्रीराम, भगवान् होने के अतिरिक्त, योग्य क्षत्रिय थे और उनका चरित्र आदर्श था। क्षत्रिय का एक गुण है दानशीलता। क्षत्रिय या शासक प्रजा से जो कर वसूल करता है वह अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करता अपितु सुपात्रों को दान देने के लिए करता है। दानम् ईश्वरभावः। एक ओर क्षत्रियों में

शासन करने की प्रबल प्रवृत्ति रहती है, किन्तु दूसरी ओर वे अत्यन्त उदार दानी होते हैं। जब महाराज युधिष्ठिर दान देते तो वे दान वितरण करने का कार्य कर्ण को सौंपते थे। कर्ण दाता कर्ण के रूप में विख्यात थे। *दाता* शब्द अत्यन्त उदार भाव से दान देने वाले का सूचक है। राजा लोग प्रचुर मात्रा में अन्न का संग्रह करते थे और जब भी अकाल पड़ता तो वे अन्न का दान देते थे। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह दान दे और ब्राह्मण का कर्तव्य है कि दान ले, किन्तु शरीर-निर्वाह से अधिक मात्रा में नहीं। अतएव जब भगवान् ने ब्राह्मणों को इतनी अधिक भूमि दान में दे दी तो उन्होंने उसे लौटा दिया क्योंकि वे लालची नहीं थे।

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर ।

यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्व तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

अप्रत्तम्—न दी हुई; नः—हमको; त्वया—आपके द्वारा; किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; भगवन्—हे भगवान्; भुवन-ईश्वर—हे सम्पूर्ण जगत के स्वामी; यत्—क्योंकि; नः—हमारा; अन्तः-हृदयम्—हृदय के भीतर; विश्व—प्रवेश कर; तमः—अज्ञान का अंधकार; हंसि—तुम नष्ट करते हो; स्व-रोचिषा—अपने तेज से।

हे प्रभु, आप सारे विश्व के स्वामी हैं। आपने हमें क्या नहीं दिया है? आपने हमारे हृदयों में प्रवेश करके अपने तेज से हमारे अज्ञान के अंधकार को दूर किया है। यही सबसे बड़ा उपहार है। हमें भौतिक दान की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य : जब ध्रुव महाराज को भगवान् द्वारा वर दिया जा रहा था तो उन्होंने कहा, “हे प्रभु! मैं पूर्णरूपेण संतुष्ट हूँ। मुझे किसी प्रकार के भौतिक वर की आवश्यकता नहीं है।” इसी प्रकार जब प्रह्लाद महाराज को नृसिंहदेव वर दे रहे थे तो उन्होंने भी उसे लेने से मनाकर दिया और यह घोषित किया कि भक्त को उस वणिक अर्थात् बनिये की तरह नहीं होना चाहिए जो किसी लाभ के बदले कोई चीज देता है। जो व्यक्ति किसी लाभ के लिए भक्त बनता है वह शुद्ध भक्त नहीं है। भगवान् सदा से ब्राह्मणों को उनके हृदय में प्रकाश देते रहे हैं। ( *सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिज्ञानमपोहनम् च* )। चूँकि ब्राह्मण तथा वैष्णव सदा से भगवान् से मार्गदर्शन पाते रहे हैं अतएव वे भौतिक सम्पदा के कभी भी लालची नहीं रहे। जितने से उनका काम चल जाता है, वे उतना ही रखते हैं। वे विस्तृत साम्राज्य की कामना नहीं करते। इसका एक उदाहरण वामनदेव द्वारा प्रस्तुत किया गया था। ब्रह्मचारी के रूप में वामनदेव ने केवल तीन पग भूमि चाही थी। अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए अधिकाधिक की चाह करना निरा अज्ञान है। ब्राह्मण या वैष्णव के हृदय में

इस अज्ञान का स्पष्ट अभाव रहता है।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।

उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

नमः—हम सादर नमस्कार करते हैं; ब्रह्मण्य-देवाय—भगवान् को, जो ब्राह्मणों को अपना पूज्यदेव मानते हैं; रामाय—भगवान् रामचन्द्र को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी स्मृति तथा ज्ञान कभी चिन्ता से ग्रस्त नहीं होते; उत्तमश्लोक-धुर्याय—सुप्रसिद्ध व्यक्तियों में सर्वश्रेष्ठ; न्यस्त-दण्ड-अर्पित-अङ्घ्रये—जिनके चरणकमलों की पूजा दण्ड के क्षेत्र से परे मुनियों द्वारा की जाती है।

हे प्रभु, आप भगवान् हैं और आपने ब्राह्मणों को अपना आराध्य देव स्वीकार किया है। आपका ज्ञान तथा स्मृति कभी चिन्ताग्रस्त नहीं होते। आप इस संसार के सभी विख्यात पुरुषों में प्रमुख हैं और आपके चरणों की पूजा अदण्डनीय मुनियों द्वारा की जाती है। हे भगवान् रामचन्द्र, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।

चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

कदाचित्—एक बार; लोक-जिज्ञासुः—जनता के विषय में जानने की इच्छा से; गूढः—वेश बदल कर; रात्र्याम्—रात में; अलक्षितः—किसी अन्य द्वारा पहचाने गये बिना; चरन्—घूमते हुए; वाचः—बोली; अशृणोत्—सुनी; रामः—रामचन्द्रजी ने; भार्याम्—अपनी पत्नी को; उद्दिश्य—इंगित करते हुए; कस्यचित्—किसी का।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : एक बार जब भगवान् रामचन्द्र रात्रि में किसी को बताये बिना वेश बदलकर छिपकर अपने विषय में लोगों का अभिमत जानने के लिए घूम रहे थे तो उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी सीतादेवी के विषय में अनुचित बातें कहते सुना।

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।

स्त्रैणो हि बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; बिभर्मि—भार वहन कर सकता हूँ; त्वाम्—तुम्हारा; दुष्टाम्—दूषित होने के कारण; असतीम्—कुलटा; पर-वेश्म-गाम्—दूसरे पुरुष के घर में जाकर और परपति-गमन करके; स्त्रैणः—पत्नीभक्त, मेहरा; हि—निस्सन्देह; बिभृयात्—स्वीकार कर सकता है; सीताम्—सीता को; रामः—रामचन्द्र जैसा; न—न; अहम्—मैं; भजे—स्वीकार करूँगा; पुनः—दुबारा।

( वह व्यक्ति अपनी कुलटा पत्नी से कह रहा था ) तुम दूसरे व्यक्ति के घर जाती हो; अतएव तुम कुलटा तथा दूषित हो। अब मैं और अधिक तुम्हारा भार नहीं वहन कर सकता। भले ही रामचन्द्र

जैसा स्त्रीभक्त पति सीता जैसी पत्नी को स्वीकार कर ले मैं उनकी तरह स्त्रीभक्त नहीं हूँ; अतएव मैं तुम्हें फिर से नहीं रख सकता।

इति लोकाद्बहुमुखादुराराध्यादसंविदः ।

पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; लोकात्—व्यक्तियों से; बहु-मुखात्—जो अनेक प्रकार से व्यर्थ की बातें कर सकते हैं; दुराराध्यात्—जिन्हें रोक पाना अत्यन्त कठिन है; असंविदः—पूर्णज्ञान से विहीन; पत्या—पति द्वारा; भीतेन—भयभीत; सा—सीता; त्यक्ता—त्यागी हुई; प्राप्ता—गई; प्राचेतस-आश्रमम्—( वाल्मीकि मुनि ) के आश्रम में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अल्पज्ञ तथा घृणित चरित्र वाले व्यक्ति अंटशंट बकते रहते हैं। ऐसे धूर्तों के भय से भगवान् रामचन्द्रजी ने अपनी पत्नी सीतादेवी का परित्याग किया यद्यपि वे गर्भिणी थीं। इस तरह सीतादेवी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में गई।

अन्तर्वत्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।

कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

अन्तर्वत्नी—गर्भिणी स्त्री; आगते—आई; काले—समय से; यमौ—जुड़वाँ; सा—सीतादेवी ने; सुषुवे—जन्म दिया; सुतौ—दो पुत्रों को; कुशः—कुश; लवः—लव; इति—इस प्रकार; ख्यातौ—विख्यात; तयोः—उन दोनों का; चक्रे—सम्पन्न किया; क्रियाः—जातकर्म संस्कार; मुनिः—वाल्मीकि ऋषि ने।

समय आने पर गर्भवती सीतादेवी ने जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया जो बाद में लव तथा कुश नाम से विख्यात हुए। उनका जातकर्म संस्कार वाल्मीकि मुनि द्वारा सम्पन्न हुआ।

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।

तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

अङ्गदः—अंगद; चित्रकेतुः—चित्रकेतु; च—भी; लक्ष्मणस्य—लक्ष्मणजी के; आत्मजौ—दो पुत्र; स्मृतौ—कहलाये; तक्षः—तक्ष; पुष्कलः—पुष्कल; इति—इस प्रकार; आस्ताम्—थे; भरतस्य—भरतजी के; महीपते—हे राजा परीक्षित।

हे महाराज परीक्षित, लक्ष्मणजी के दो पुत्र हुए जिनके नाम अंगद और चित्रकेतु थे और भरतजी के भी दो पुत्र हुए जिनके नाम तक्ष तथा पुष्कल थे।

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।  
 गन्धर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ।  
 तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ १३ ॥  
 शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ।  
 हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

सुबाहुः—सुबाहु; श्रुतसेनः—श्रुतसेन; च—भी; शत्रुघ्नस्य—शत्रुघ्न के; बभूवतुः—उत्पन्न हुए; गन्धर्वान्—गन्धर्वों से सम्बन्धित पुरुष, जो अधिकतर कपटी होते हैं; कोटिशः—करोड़ों की संख्या में; जघ्ने—मार डाला; भरतः—भरतजी ने; विजये—विजय करते हुए; दिशाम्—सारी दिशाएँ; तदीयम्—गन्धर्वों का; धनम्—धन; आनीय—लाकर; सर्वम्—हर वस्तु; राज्ञे—राजा ( रामचन्द्र ) को; न्यवेदयत्—भेंट किया; शत्रुघ्नः—शत्रुघ्न; च—तथा; मधोः—मधु के; पुत्रम्—पुत्र; लवणम्—लवण; नाम—नामक; राक्षसम्—मानवभक्षी को; हत्वा—मारकर; मधुवने—मधुवन नामक जंगल में; चक्रे—बनवाया; मथुराम्—मथुरा को; नाम—नामक; वै—निस्सन्देह; पुरीम्—बड़ा नगर ।

शत्रुघ्न के सुबाहु तथा श्रुतसेन नामक दो पुत्र हुए। जब भरतजी सभी दिशाओं को जीतने गये तो उन्हें करोड़ों गन्धर्वों का वध करना पड़ा जो सामान्यतया कपटी होते हैं। उन्होंने उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली और उसे लाकर भगवान् रामचन्द्र को अर्पित कर दिया। शत्रुघ्न ने भी लवण नामक एक राक्षस का वध किया जो मधु राक्षस का पुत्र था। इस तरह उन्होंने मधुवन नामक महान् जंगल में मथुरा नामक पुरी की स्थापना की।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ।  
 ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

मुनौ—वाल्मीकि मुनि को; निक्षिप्य—सौंप कर; तनयौ—लव तथा कुश दोनों पुत्र; सीता—सीतादेवी; भर्त्रा—अपने पति द्वारा; विवासिता—वनवास दी गई; ध्यायन्ती—ध्यान करती; राम-चरणौ—भगवान् राम के चरणकमल; विवरम्—पृथ्वी के भीतर; प्रविवेश—प्रवेश कर गई; ह—निस्सन्देह।

अपने पति द्वारा परित्यक्ता सीतादेवी ने अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि की देखरेख में छोड़ दिया। तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों का ध्यान करती हुई वे पृथ्वी में प्रविष्ट हो गईं।

तात्पर्य : सीतादेवी के लिए रामचन्द्र से बिछुड़ कर रह पाना असम्भव था। अतएव वे अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में छोड़कर पृथ्वी में समा गईं।

तच्छ्रुत्वा भगवान्नामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ।  
 स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ १६ ॥

**शब्दार्थ**



तत्—यह ( सीता का पृथ्वी में समाने का संदेश ); श्रुत्वा—सुनकर; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र; रुन्धन्—त्यागने का प्रयत्न करते; अपि—यद्यपि; धिया—बुद्धि से; शूचः—शोक; स्मरन्—स्मरण करते हुए; तस्याः—उसके; गुणान्—गुण; तान् तान्—विभिन्न परिस्थितियों में; न—नहीं; अशक्नोत्—समर्थ था; रोद्धुम्—रोकने के लिए; ईश्वरः—परम नियन्ता होकर भी।

सीतादेवी के पृथ्वी में प्रविष्ट होने का समाचार सुनकर भगवान् निश्चित रूप से दुखी हुए। यद्यपि वे भगवान् हैं, किन्तु सीतादेवी के महान् गुणों का स्मरण करके वे दिव्य प्रेमवश अपने शोक को रोक न सके।

तात्पर्य : सीतादेवी द्वारा पृथ्वी में प्रवेश करने के समाचार से उत्पन्न भगवान् राम के शोक को भौतिक नहीं मानना चाहिए। आध्यात्मिक जगत में भी विरह-भाव होते हैं, किन्तु ऐसे भावों को आध्यात्मिक आनन्द माना जाता है। वियोग जनित शोक तो ब्रह्म में भी पाया जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में ऐसे वियोग-भावों को आनन्दमय माना जाता है। ऐसा भाव तस्य प्रेमवश्यत्वस्वभाव का लक्षण माना जाता है और यह ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव में रहता है तथा प्रेम द्वारा नियंत्रित होता है। भौतिक जगत में ऐसे वियोग भाव केवल विकृत प्रतिबिम्ब होते हैं।

स्त्रीपुं प्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ।

अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

स्त्री-पुं-प्रसङ्गः—पति तथा पत्नी के मध्य अथवा पुरुष तथा स्त्री के मध्य आकर्षण; एतादृक्—इस प्रकार का; सर्वत्र—सभी जगह; त्रासम्-आवहः—भय का कारण; अपि—भी; ईश्वराणाम्—नियन्ताओं का; किम् उत—क्या कहा जाय; ग्राम्यस्य—इस भौतिक जगत के सामान्य मनुष्यों का; गृह-चेतसः—भौतिकतावादी गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त।

स्त्री तथा पुरुष अथवा नर और मादा के मध्य आकर्षण हर जगह और हर समय पाया जाता है जिससे हर व्यक्ति सदा भयभीत रहता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे नियन्ताओं में भी ऐसी भावनाएँ पाई जाती हैं और उनके लिए भी ये भय के कारण हैं। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जो इस भौतिक जगत में गृहस्थ-जीवन के प्रति आसक्त हैं?

तात्पर्य : जैसा कि पहले बताया जा चुका है जब आध्यात्मिक जगत से प्रेम तथा दिव्य आनन्द के अनुभवों का इस जगत में विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वे बन्धन का कारण बन जाते हैं। जब तक इस जगत में पुरुष स्त्रियों के प्रति और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति आकर्षित होती रहेंगी तब तक जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहेगा। किन्तु आध्यात्मिक जगत में जन्म-मृत्यु का कोई भय न होने से ऐसी वियोग की भावनाएँ

दिव्य आनन्द की कारण स्वरूपा हैं। वास्तव में अनुभवों की विविधता होती है, किन्तु वे सब दिव्य आनन्द के समान गुण वाले हैं।

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धार्यन्नजुहोत्प्रभुः ।  
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ऊर्ध्वम्—सीता द्वारा पृथ्वी में प्रविष्ट होन के बाद; ब्रह्मचर्यम्—पूर्ण ब्रह्मचर्य; धारयन्—धारण करते हुए; अजुहोत्—यज्ञ किये; प्रभुः—भगवान् रामचन्द्र ने; त्रयोदश-अब्द-साहस्रम्—तेरह हजार वर्षों तक; अग्निहोत्रम्—अग्निहोत्र यज्ञ; अखण्डितम्—अनवरत।

सीता द्वारा पृथ्वी में प्रवेश करने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया और तेरह हजार वर्षों तक वे अनवरत अग्निहोत्र यज्ञ करते रहे।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।  
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

स्मरताम्—जो उनका सदैव स्मरण करते हैं उन लोगों के; हृदि—हृदय में; विन्यस्य—रखकर; विद्धम्—चुभा हुआ; दण्डक-कण्टकैः—दण्डकारण्य में लगे काँटों द्वारा ( जब रामचन्द्रजी वहाँ रह रहे थे ); स्व-पाद-पल्लवम्—अपने चरणकमलों की पंखड़ियों; रामः—भगवान् रामचन्द्र ने; आत्म-ज्योतिः—ब्रह्मज्योति नामक उनकी शारीरिक कान्ति की किरणें; अगात्—प्रवेश किया; ततः—ब्रह्मज्योति के परे या अपने वैकुण्ठलोक में।

यज्ञ पूरा कर लेने के बाद दण्डकारण्य में रहते हुए भगवान् रामचन्द्र के जिन चरणकमलों में कभी-कभी काँटे चुभ जाते थे उन चरण-कमलों को उन्होंने उन लोगों के हृदयों में रख दिया जो उनका निरन्तर चिन्तन करते हैं। तत्पश्चात् वे ब्रह्मज्योति से परे अपने धाम वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : भगवान् के चरणकमल सदैव ही भक्तों द्वारा ध्यान करने योग्य हैं। जब रामचन्द्रजी दण्डकारण्य के जंगल में घूमते थे तो कभी-कभी उनके चरणकमलों में काँटे चुभ जाया करते थे। भक्तगण इसे सोचकर मूर्छित हो जाते हैं। भगवान् को इस जगत के किसी कार्य या कारण से किसी प्रकार की पीड़ा या हर्ष का अनुभव नहीं होता, किन्तु भक्तों को सख्त नहीं कि भगवान् के चरणकमलों में एक भी काँटा चुभे। गोपियाँ कृष्ण के विषय में ऐसा ही सोचती थीं, जब जंगल में घूमते हुए उनके पाँवों में कंकड़ तथा बालू के कण चुभ जाते थे। भक्तों के हृदय में उठने वाली पीड़ा को कर्मा, ज्ञानी या योगीजन नहीं समझ सकते। जिन भक्तों को यह सोचना भी सख्त नहीं था कि भगवान् के चरणकमलों में एक काँटा भी गड़े, उन्हें

भगवान् के तिरोधान के बारे में सोचने से उत्पन्न वेदना सहन करनी पड़ी क्योंकि भगवान् को इस जगत में अपनी लीलाएँ समाप्त करके अपने धाम वापस लौटना पड़ा।

*आत्मज्योति* शब्द महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मज्योति जिसकी प्रशंसा वे ज्ञानी या एकेश्वरवादी दार्शनिक करते हैं जो मुक्ति के लिए उसमें प्रवेश करना चाहते हैं भगवान् के शरीर की किरणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—

*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-*

*कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम् ।*

*तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं*

*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥*

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो महान् शक्ति से युक्त हैं। उनके दिव्य स्वरूप का प्रखर तेज निर्विशेष ब्रह्म है जो परम, पूर्ण तथा असीम है और जो करोड़ों ब्रह्माण्डों में असंख्य लोकों के रूप में उनके विविध ऐश्वर्यों सहित दृश्य होता है।” (*ब्रह्म-संहिता* ५.४०)। ब्रह्मज्योति आध्यात्मिक जगत की शुरुआत है और इसके परे वैकुण्ठलोक हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मज्योति वैकुण्ठलोकों के बाहर रहती है जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सूर्य से बाहर रहता है। सूर्य में प्रवेश करने के लिए सूर्य के प्रकाश को पार करना होगा। इसी प्रकार जब भगवान् या उनके भक्त वैकुण्ठलोकों में जाते हैं तो उन्हें ब्रह्मज्योति पार करके जाना होता है। ज्ञानी या एकेश्वरवादी दार्शनिक निराकार ब्रह्म की धारणा रखने के कारण वैकुण्ठलोकों में प्रवेश नहीं कर सकते, किन्तु ब्रह्मज्योति में वे सदा के लिए रुके भी नहीं रह सकते। अतएव वे कुछ काल बाद पुनः इस जगत में आ गिरते हैं। आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनाहतयुष्मदङ्घ्रयः (*भागवत* १०.२.३२)। वैकुण्ठलोक ब्रह्मज्योति से घिरे हैं अतएव शुद्ध भक्त के बिना कोई यह ठीक से नहीं समझ सकता कि वैकुण्ठलोक हैं क्या।

*नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्चयात्त-*

*लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।*

*रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः*

किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

न—नहीं; इदम्—ये सब; यशः—यश; रघु-पतेः—भगवान् रामचन्द्र का; सुर-याच्यया—देवताओं की स्तुतियों के द्वारा; आत्त-लीला-तनोः—जिनका आध्यात्मिक शरीर सदैव विभिन्न लीलाओं में लगा रहता है; अधिक-साम्य-विमुक्त-धाम्नः—कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है; रक्षः-वधः—राक्षस ( रावण ) वध; जलधि-बन्धनम्—समुद्र पर पुल बाँधना; अस्त्र-पूगैः—धनुष बाण के द्वारा; किम्—क्या; तस्य—उसका; शत्रु-हनने—शत्रुओं का वध करने में; कपयः—सारे बन्दर; सहायाः—सहायक।

विभिन्न लीलाओं में सदैव संलग्न दिव्य देहधारी भगवान् रामचन्द्र का वास्तविक यश इसमें नहीं है कि उन्होंने देवताओं के आग्रह पर बाणों की वर्षा करके रावण का वध किया और समुद्र पर सेतु का निर्माण किया। न तो कोई भगवान् रामचन्द्र के तुल्य है न उनसे बढ़कर; अतएव उन्हें रावण पर विजय प्राप्त करने में वानरों से कोई सहायता लेने की आवश्यकता नहीं थी।

तात्पर्य : वेदों में कहा गया है ( श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.८ )—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

“भगवान् को कुछ भी नहीं करना होता और कोई भी न तो उनके तुल्य है न उनसे बढ़कर है क्योंकि उनकी विविध शक्तियों के द्वारा ही सब सहज भाव से और व्यवस्थित रूप से घटित होता है।” भगवान् को कुछ भी नहीं करना पड़ता ( न तस्य कार्यं करणं च विद्यते )—वे जो भी करते हैं वह उनकी लीला है। भगवान् को किसी के अधीन रहकर कुछ भी कार्य नहीं करना पड़ता। फिर भी वे अपने भक्तों की रक्षा करने अथवा अपने शत्रुओं का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। निस्सन्देह, भगवान् का कोई शत्रु नहीं हो सकता क्योंकि उनसे बढ़कर कौन अधिक शक्तिमान हो सकता है? अतएव किसी के उनके शत्रु होने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु जब उन्हें लीलाओं का आनन्द लेना होता है तो वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और मनुष्य की भाँति कर्म करते हैं और इस तरह अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए अद्भुत महिमामय कार्यकलाप करते हैं। उनके भक्त उन्हें विविध कार्यों में सदा विजयी होते देखना चाहते हैं, अतएव स्वयं को तथा भक्तों को प्रसन्न करने के लिए भगवान् कभी-कभी मनुष्य की भाँति कर्म करने के लिए राजी होते हैं और भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए अद्भुत असाधारण लीलाएँ करते हैं।

यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि  
 गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।  
 तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-  
 पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

**शब्दार्थ**

यस्य—जिसका ( रामचन्द्र का ); अमलम्—निष्कलंक, भौतिक गुणों से रहित; नृप-सदःसु—महाराज युधिष्ठिर जैसे सम्राटों की सभा में; यशः—ख्याति; अधुना अपि—आज भी; गायन्ति—गायन करते हैं; अघ-घ्नम्—सारे पापों को दूर करने वाला; ऋषयः—मार्कण्डेय जैसे ऋषिगण; दिक्-इभ-इन्द्र-पट्टम्—दिग्विजय करने वाले हाथी के ऊपर पड़ा अलंकृत झूल; तम्—उस; नाक-पाल—स्वर्ग के देवताओं के; वसु-पाल—पृथ्वी के राजाओं के; किरीट—मुकुटों द्वारा; जुष्ट—पूजा किये जाते हैं; पाद-अम्बुजम्—जिनके चरणकमल; रघु-पतिम्—भगवान् रामचन्द्र की; शरणम्—शरण में; प्रपद्ये—जाता हूँ।

भगवान् रामचन्द्र का निर्मल नाम तथा यश सारे पापों के फलों को नष्ट करने वाला है। सारी दिशाओं में वह उसी तरह विख्यात है जिस तरह समस्त दिशाओं पर विजय पाने वाले हाथी का लटकता अलंकृत झूल हो। मार्कण्डेय ऋषि जैसे महान् साधु पुरुष अब भी महाराज युधिष्ठिर जैसे सम्राटों की सभाओं में उनके गुणों का गान करते हैं। इसी तरह सारे ऋषि तथा देवता, जिनमें शिवजी तथा ब्रह्माजी भी सम्मिलित हैं, अपने-अपने मुकुटों को झुकाकर भगवान् की पूजा करते हैं। उन भगवान् के चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ।  
 कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वे, भगवान् रामचन्द्र; यैः—जिन पुरुषों के द्वारा; स्पृष्टः—स्पर्श किया गया; अभिदृष्टः—देखा गया; वा—या तो; संविष्टः—साथ भोजन और शयन करते हुए; अनुगतः—नौकरों की भाँति पीछे-पीछे चलते हुए; अपि वा—भी; कोसलाः—कोसलवासी; ते—वे; ययुः—चले गये; स्थानम्—स्थान को; यत्र—जहाँ; गच्छन्ति—जाते हैं; योगिनः—सारे भक्तियोगी।

भगवान् रामचन्द्र अपने धाम को लौट आये जहाँ भक्तियोगी जाते हैं। यही वह स्थान है जहाँ अयोध्या के सारे निवासी भगवान् को उनकी प्रकट लीलाओं में नमस्कार करके, उनके चरणकमलों का स्पर्श करके, उन्हें पितृतुल्य राजा मानकर, उनकी बराबरी में बैठकर या लेटकर या मात्र उनके साथ रहकर, उनकी सेवा करने के बाद वापस गये।

तात्पर्य : भगवान् भगवद्गीता (४.९) कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो मेरे प्राकट्य की दिव्य प्रकृति तथा मेरे कार्यकलापों को जानता है वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु हे अर्जुन! वह मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।” यहाँ इसकी पुष्टि हुई है। अयोध्या के सारे निवासी, जिन्होंने प्रजा के रूप में भगवान् रामचन्द्र का दर्शन किया, दास रूप में उनकी सेवा की, उनके साथ मित्र या अन्य रूप में बैठे-बोले या उनके शासनकाल में उपस्थित थे वे सभी भगवद्धाम वापस गये। जिस भक्त की भक्ति पूर्ण होती है वह इस शरीर को त्यागकर उस विशेष ब्रह्माण्ड में प्रवेश करता है जहाँ भगवान् रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण अपनी लीलाओं में व्यस्त रहते हैं। तब उस प्रकट लीला में विभिन्न पदों पर रहकर भगवान् की सेवा करना सीखकर भक्त अन्त में सनातन धाम पहुँचता है। *भगवद्गीता* में इस सनातन धाम का भी उल्लेख मिलता है ( *परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः* )। जो भगवान् की नित्य लीलाओं में प्रवेश पा जाता है वह *नित्य-लीला-प्रविष्ट* कहलाता है। यह स्पष्ट तौर पर समझने के लिए कि रामचन्द्रजी वापस क्यों गये, यहाँ यह उल्लेख हुआ है कि वे उस विशेष स्थान को गये जहाँ भक्तियोगी जाते हैं। निर्विशेषवादी *श्रीमद्भागवत* के कथन से इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि इसका अर्थ यह है कि भगवान् अपने ही तेज में प्रविष्ट हुए; अतएव वे निराकार हो जाते हैं। किन्तु भगवान् तो पुरुष हैं और उनके भक्त भी पुरुष हैं। निस्सन्देह, सारे जीव भी भगवान् के समान भूतकाल में पुरुष थे, वर्तमान काल में भी पुरुष हैं और इस शरीर को त्यागने पर भी पुरुष बने रहेंगे। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है।

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।

आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

पुरुषः—कोई व्यक्ति; राम-चरितम्—भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों से सम्बन्धित कथा को; श्रवणैः—कानों से; उपधारयन्—श्रवण करके; आनृशंस्य-परः—ईर्ष्या से पूरी तरह मुक्त हो जाता है; राजन्—हे राजा परीक्षित; कर्म-बन्धैः—कर्म के बन्धन से; विमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

हे राजा परीक्षित, जो भी व्यक्ति भगवान् रामचन्द्र के गुणों से सम्बन्धित कथाओं को कानों से सुनता है वह अन्ततोगत्वा ईर्ष्या के रोग से मुक्त हो जायेगा और फलस्वरूप कर्मबन्धन से छूट जायेगा।

**तात्पर्य :** इस जगत में हर व्यक्ति किसी न किसी से ईर्ष्या करता है। यहाँ तक कि धार्मिक जीवन में भी यदि कोई भक्त आध्यात्मिक कार्यों में आगे बढ़ चुका होता है तो अन्य भक्त उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। ऐसा ईर्ष्यालु भक्त जन्म-मृत्यु के कारण से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाता। जब तक कोई जन्ममरण के बन्धन से पूर्णतया मुक्त नहीं ही जाता, तब तक वह सनातन धाम में प्रविष्ट नहीं हो सकता। देह की उपाधियों से प्रभावित होकर मनुष्य ईर्ष्यालु बनता है, किन्तु मुक्त भक्त को शरीर से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता; अतएव वह दिव्य पद पर पूर्णतया स्थित रहता है। भक्त किसी से भी ईर्ष्या नहीं करता, यहाँ तक कि अपने शत्रु से भी नहीं। चूँकि भक्त यह जानता है कि भगवान् उसके परम रक्षक हैं अतएव वह सोचता है, “तथाकथित शत्रु मेरा क्या बिगाड़ सकता है।” इस तरह भक्त अपनी सुरक्षा के बारे में आश्वस्त रहता है। भगवान् कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—जो जिस अनुपात में मेरी शरण में आता है उसी के अनुसार मैं उसकी रक्षा करता हूँ। अतएव भक्त को पूर्णतया ईर्ष्याविहीन होना चाहिए और विशेष रूप से अन्य भक्तों से। उन से ईर्ष्या करना महान् अपराध है और यह वैष्णव अपराध कहलाता है। जो भक्त निरन्तर श्रवण-कीर्तन में लगा रहता है वह निश्चित रूप से ईर्ष्या-रोग से मुक्त हो जाता है और इस तरह भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है।

श्रीराजोवाच

कथं स भगवान्नामो भ्रातृन्वा स्वयमात्मनः ।  
तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने पूछा; कथम्—कैसे; सः—उन; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र ने; भ्रातृन्—भाइयों (लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न) के प्रति; वा—अथवा; स्वयम्—स्वयं; आत्मनः—अपना विस्तार; तस्मिन्—भगवान् के प्रति; वा—अथवा; ते—उन (निवासी तथा भाइयों ने); अन्ववर्तन्त—बर्ताव किया; प्रजाः—सारे निवासियों; पौराः—नागरिकों ने; च—तथा; ईश्वरे—भगवान् के प्रति।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा: भगवान् ने स्वयं किस तरह का बर्ताव किया और अपने विस्तार (अंश) स्वरूप अपने भाइयों के साथ कैसा बर्ताव किया? और उनके भाइयों ने तथा अयोध्यावासियों ने उनके साथ कैसा बर्ताव किया?

श्रीबादरायणिरुवाच

अथादिशद्दिविजये भ्रातृन्त्रिभुवनेश्वरः ।

आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तत्पश्चात् ( भरत के आग्रह पर भगवान् के सिंहासनारूढ़ होने पर ); आदिशत्—आज्ञा दी; दिक्-विजये—सारे संसार को जीतने के लिए; भ्रातृन्—अपने छोटे भाइयों को; त्रि-भुवन-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी ने; आत्मानम्—स्वयं; दर्शयन्—दर्शन देते हुए; स्वानाम्—अपने परिजनों तथा नागरिकों को; पुरीम्—नगरी को; ऐक्षत—निरीक्षण किया; स-अनुगः—अपने सहायकों के साथ ।

शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया: अपने छोटे भाई भरत के आग्रह पर राजसिंहासन स्वीकार करने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने अपने छोटे भाइयों को आदेश दिया कि वे बाहर जाकर सारे विश्व को जीतें जबकि वे स्वयं राजधानी में रहकर सारे नागरिकों तथा प्रासाद के वासियों को दर्शन देते रहे तथा अपने अन्य सहायकों के साथ राजकाज की निगरानी करते रहे ।

तात्पर्य : भगवान् अपने किसी भक्त या सहायक को इन्द्रियतृप्ति में तल्लीन रहने की अनुमति नहीं देते । भगवान् रामचन्द्रजी के छोटे भाई महल में भगवान् के दर्शनों का आनन्द ले रहे थे, किन्तु भगवान् ने उन्हें आदेश दिया कि वे बाहर जाकर सारे विश्व को जीतें । ऐसी प्रथा थी(और आज भी कहीं-कहीं है) कि अन्य सारे राजा सम्राट की श्रेष्ठता स्वीकार करें । यदि किसी छोटे राज्य का राजा सम्राट की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता था तो युद्ध होता था और उसे सम्राट की अधीनता स्वीकार करनी होती थी अन्यथा सम्राट के द्वारा पूरे देश में शासन चला पाना सम्भव नहीं हो सकता था ।

भगवान् रामचन्द्र ने अपने भाइयों को बाहर जाने के लिए आज्ञा देकर उनके साथ दया दिखलाई । वृन्दावन में रहने वाले अनेक भगवद्भक्तों ने व्रत ले रखा है कि वे कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए वृन्दावन नहीं छोड़ेंगे । किन्तु भगवान् का कहना है कि कृष्णभावनामृत सारे विश्व में प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर में प्रसारित हो । भगवान् चैतन्य महाप्रभु का यह खुला आदेश है—

*पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम*

*सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम*

अतएव शुद्ध भक्त को भगवान् के आदेश का पालन करना चाहिए न कि एक ही स्थान में बंधे रहकर इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहना चाहिए और यह सोचकर गर्वित नहीं होना चाहिए कि वह वृन्दावन नहीं छोड़ेगा और एकान्त में कीर्तन करेगा और वह महान् भक्त बन जाएगा । भक्त को तो भगवान् के आदेश को पूरा



करना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* अतएव हर एक भक्त को चाहिए कि वह जिस किसी से भी मिले उससे भगवान् का आदेश मानने को कहे और इस प्रकार उपदेश द्वारा कृष्णभावनामृत का प्रसार करे। भगवान् कहते हैं—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज*—सारे धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण ग्रहण करो। यही भगवान् का आदेश है। हर एक को इस आदेश को मानना चाहिए क्योंकि यह दिग्विजय है। प्रत्येक सैनिक अर्थात् भक्त का यह धर्म है कि वह हर एक पर इस जीवन-दर्शन को ग्रहण करने के लिए जोर डाले।

निस्सन्देह, जो कनिष्ठ अधिकारी हैं वे उपदेश नहीं देते, किन्तु भगवान् उन पर भी कृपादृष्टि डालते हैं जैसे कि भगवान् ने अयोध्या में स्वयं ठहरकर लोगों को अपना दर्शन दिया। किसी को गलती से यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् ने अपने भाइयों को अयोध्या छोड़ने के लिए आज्ञा इसलिए दी क्योंकि वे प्रजा पर विशेष कृपालु थे। भगवान् हर एक पर दयालु हैं और वे जानते हैं कि हर व्यक्ति पर उसकी क्षमता के अनुसार किस प्रकार दया की जाय। जो व्यक्ति भगवान् के आदेश का पालन करता है वह शुद्ध भक्त है।

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ।

स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आसिक्त-मार्गाम्—सड़कें सींची गई थीं; गन्ध-उदैः—सुगन्धित जल से; करिणाम्—हाथियों के; मद-शीकरैः—सुगन्धित तरल की बूंदों से; स्वामिनम्—स्वामी को; प्राप्तम्—उपस्थित; आलोक्य—साक्षात् देखकर; मत्ताम्—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; वा—अथवा; सुतराम्—अत्यधिक; इव—मानो।

भगवान् रामचन्द्र के शासन काल में अयोध्या की सड़कें सुगन्धित जल से तथा हाथियों द्वारा अपनी सूँडों से फेंके गये सुगन्धित तरल की बूँदों से सींची जाती थीं। जब नागरिकों ने देखा कि भगवान् स्वयं ही इतने वैभव के साथ शहर के मामलों की देखरेख कर रहे हैं तो उन्होंने इस वैभव की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तात्पर्य : हमने रामचन्द्रजी के शासनकाल में रामराज्य के वैभव के विषय में सुन रखा है। यहाँ पर भगवान् के राज्य-वैभव का एक उदाहरण प्रस्तुत है। अयोध्या की सड़कें न केवल बुहारी जाती थीं वरन् सुगन्धित जल तथा हाथी की सूँडों द्वारा छिड़के गये सुगन्धित तरल से सींची जाती थीं। उस समय छिड़काव करने वाले यंत्रों की जरूरत नहीं पड़ती थी क्योंकि हाथियों में जल को अपनी सूँड में भरकर छिड़कने की

सहज शक्ति पाई जाती है। हम इसी एक उदाहरण से शहर के वैभव का पता लगा सकते हैं। इसे वास्तव में सुगंधित जल से छिड़का जाता था। यही नहीं, नागरिकों को भगवान् द्वारा राज्य के सारे मामलों की स्वयं निगरानी करते देखने का सौभाग्य प्राप्त था। वे आलसी सम्राट न थे, जैसा कि हम उनके कार्यों से देखते हैं कि राजधानी से दूर के मामलों की देखरेख करने तथा जो सम्राट के आदेशों का पालन न करे उसे दण्ड देने के लिए उन्होंने भाइयों को भेज रखा था। यह दिग्विजय कहलाती है। नागरिकों को शान्त जीवन बिताने की सारी सुविधाएँ प्राप्त थीं और वे वर्णाश्रम धर्म के अनुसार समुचित लक्षणों से सम्पन्न थे। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं—*वर्णाश्रम गुणान्विताः*—नागरिकों को वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार प्रशिक्षण प्राप्त था। लोगों का एक वर्ग ब्राह्मण था, एक अन्य वर्ग क्षत्रिय था, एक तीसरा वर्ग वैश्यों का था और चौथा वर्ग शूद्रों का था। ऐसे वैज्ञानिक विभाजन के बिना अच्छी नागरिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। राजा उदार तथा कर्तव्यपरायण होने के कारण अनेक यज्ञ करता था और प्रजा को पुत्रवत् मानता था। नागरिक भी वर्णाश्रम प्रणाली में प्रशिक्षित होने से अत्यन्त आज्ञाकारी एवं सुसंयमित थे। सम्पूर्ण राजतंत्र इतना वैभवशाली तथा शान्त था कि सरकार सड़कों पर भी सुगन्धित जल का छिड़काव करा सकती थी, अन्य व्यवस्था की बात तो छोड़ दें। चूँकि सारी नगरी में सुगन्धित जल से छिड़काव हुआ था, अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि अन्य मामलों में वह कितनी वैभवशाली थी। तो भला भगवान् रामचन्द्र के राज्य में लोग सुखी क्यों न रहे होंगे!

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।

विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

प्रासाद—महल; गोपुर—महल के द्वार; सभा—सभाभवन; चैत्य—चबूतरे; देव-गृह—मन्दिर जहाँ अर्चाविग्रहों की पूजा की जाती है; आदिषु—इत्यादि में; विन्यस्त—रखे; हेम-कलशैः—सुनहरे जल पात्रों सहित; पताकाभिः—झंडियों से; च—भी; मण्डिताम्—अलंकृत।

सारे महल, महलों के द्वार, सभाभवन, चबूतरे, मन्दिर तथा अन्य ऐसे स्थान सुनहरे जलपात्रों (कलशों) से सजाये और विभिन्न प्रकार की झंडियों से अलंकृत किये जाते थे।

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ।

आदर्शैरंशुकैः स्वग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

पूगैः—सुपारी के पेड़ों से; स-वृत्तैः—फूलों तथा फलों के गुच्छों से; रम्भाभिः—केले के वृक्षों से; पट्टिकाभिः—पताकाओं से; सु-वाससाम्—रंगीन वस्त्र से सुसज्जित; आदर्शैः—शीशों से; अंशुकैः—वस्त्रों से; स्वग्भिः—मालाओं से; कृत-कौतुक—शुभ बनाये गये; तोरणाम्—स्वागत द्वारों से युक्त।

जहाँ कहीं भगवान् रामचन्द्र जाते, वहीं केले के वृक्षों तथा फल-फूलों से युक्त सुपारी के वृक्षों से स्वागत-द्वार बनाये जाते थे। इन द्वारों को रंगबिरंगे वस्त्र से बनी पताकाओं, बन्दनवारों, दर्पणों तथा मालाओं से सजाया जाता था।

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ।

आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक्त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उनके; उपेयुः—पास गये; तत्र तत्र—जहाँ भी वे गये; पौराः—पड़ोस के निवासी; अर्हण-पाणयः—भगवान् के पूजन की सामग्री लिये; आशिषः—भगवान् से प्राप्त आशीर्वाद; युयुजुः—नीचे आया; देव—हे प्रभु; पाहि—पालन कीजिए; इमाम्—इस भूमि को; प्राक्—पहले की तरह; त्वया—आपके द्वारा; उद्धृताम्—रक्षा की गई ( वराह अवतार लेकर समुद्र के नीचे से निकाला )।

भगवान् रामचन्द्र जहाँ कहीं भी जाते, लोग पूजा की सामग्री लेकर उनके पास पहुँचते और उनके आशीर्वाद की याचना करते। वे कहते, “हे प्रभु, जिस प्रकार आपने अपने सूकर अवतार में समुद्र के नीचे से पृथ्वी का उद्धार किया, उसी तरह अब आप उसका पालन करें। हम आपसे यही आशीष माँगते हैं।”

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं

दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ।

आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-

मतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रजाः—प्रजा; वीक्ष्य—देखकर; पतिम्—राजा को; चिर-आगतम्—दीर्घकाल के बाद आया हुआ; दिदृक्षया—देखने की इच्छा से; उत्सृष्ट-गृहाः—अपने-अपने घरों को त्यागकर; स्त्रियः—स्त्रियाँ; नराः—पुरुषगण; आरुह्य—चढ़कर; हर्म्याणि—विशाल महलों की छत पर; अरविन्द-लोचनम्—कमल की पँखुड़ी जैसे नेत्रों वाले भगवान् रामचन्द्र को; अतृप्त-नेत्राः—अतृप्त नेत्रों से; कुसुमैः—फूलों से; अवाकिरन्—भगवान् पर वर्षा की।

तत्पश्चात्, दीर्घकाल से भगवान् का दर्शन न किये रहने से, नर तथा नारी उन्हें देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक होकर अपने-अपने घरों को त्यागकर महलों की छतों पर चढ़ गये। कमलनयन भगवान् रामचन्द्र के मुखमण्डल का दर्शन करके न अघाने के कारण वे उन पर फूलों की वर्षा करने

लगे ।

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ।

अनन्तारखिलकोषाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।

स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भाजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥

चित्रस्त्रगिभः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।

मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ।

स्त्रीपुम्भिः सुरसङ्काशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥

### शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; प्रविष्टः—उन्होंने प्रवेश किया; स्व-गृहम्—अपने महल में; जुष्टम्—भरा हुआ; स्वैः—अपने परिजनों से; पूर्व-राजभिः—राजकुल में पूर्ववर्ती सदस्यों से; अनन्त—असीम; अखिल—सर्वत्र; कोष—खजाना; आढ्यम्—सम्पन्न; अनर्घ्य—अमूल्य; उरु—उच्च; परिच्छदम्—साज-सामान; विद्रुम—मूँगे का; उदुम्बर-द्वारैः—दरवाजे के दोनों पार्श्वों सहित; वैदूर्य-स्तम्भ—वैदूर्यमणि के बने ख भों से; पङ्क्तिभिः—पंक्तिबद्ध; स्थलैः—फर्शों से; मारकतैः—मरकत मणि से बने; स्वच्छैः—स्वच्छ, पालिश किये; भाजत्—चमचमाते; स्फटिक—संगमरमर; भित्तिभिः—नीवों से; चित्र-स्त्रगिभः—नाना प्रकार की फूल मालाओं से; पट्टिकाभिः—झंडियों से; वासः—वस्त्र; मणि-गण-अंशुकैः—विविध तेजयुक्त तथा मूल्यवान् मणियों से; मुक्ता-फलैः—मोतियों से; चित्-उल्लासैः—मन के आनन्द को बढ़ाने वाले; कान्त-काम—इच्छा को पूरी करने वाले; उपपत्तिभिः—ऐसे साज-सामान से; धूप-दीपैः—धूप तथा दीप से; सुरभिभिः—अत्यन्त सुगन्धित; मण्डितम्—सुसज्जित; पुष्प-मण्डनैः—फूलों के गुच्छों से; स्त्री-पुम्भिः—स्त्रियों तथा पुरुषों से; सुर-सङ्काशैः—देवताओं की तरह लगने वाले; जुष्टम्—से पूर्ण; भूषण-भूषणैः—जिनके शरीर आभूषणों को सुन्दर बना रहे थे ।

तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र अपने पूर्वजों के महल में गये। इस महल के भीतर विविध खजाने तथा मूल्यवान् अल्मारियाँ थीं। प्रवेश द्वार के दोनों ओर की बैठकें मूँगे से बनी थीं, आँगन वैदूर्यमणि के ख भों से घिरा था, फर्श अत्यधिक पालिश की हुई मरकतमणि से बनी थी और नीव संगमरमर की बनी थी। सारा महल झंडियों तथा मालाओं से सजाया गया था एवं मूल्यवान्, चमचमाते मणियों से अलंकृत किया गया था। महल पूरी तरह मोतियों से सजाया गया था और धूप-दीप से घिरा था। महल के भीतर के स्त्री-पुरुष देवताओं के समान थे और वे विविध आभूषणों से अलंकृत थे। ये आभूषण उनके शरीरों में पहने जाने के कारण सुन्दर लग रहे थे।

तस्मिन्स भगवान्नामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ।

रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

तस्मिन्—उस महल में; सः—वह; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र; स्निग्धया—सदैव उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर; प्रियया  
इष्टया—अपनी सर्व-प्रिय पत्नी समेत; रेमे—भोग किया; स्व-आराम—निजी आनन्द; धीरणाम्—महान् विद्वज्जनों का; ऋषभः—  
प्रमुख; सीतया—सीता सहित; किल—निस्सन्देह।

श्रेष्ठ विद्वान् पंडितों में अग्रणी भगवान् रामचन्द्र ने उस महल में अपनी ह्लादिनी शक्ति सीतादेवी के  
साथ निवास किया और पूर्ण शान्ति का भोग किया।

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ।

वर्षपूगान्बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

बुभुजे—भोग किया; च—भी; यथा-कालम्—जब तक चाहा; कामान्—सारे भोग; धर्मम्—धर्म; अपीडयन्—उल्लंघन किये बिना;  
वर्ष-पूगान्—वर्षों की अवधि; बहून्—अनेक; नृणाम्—लोगों का; अभिध्यात—ध्यान किये जाने पर; अङ्घ्रि-पल्लवः—उनके  
चरणकमल।

धर्म के सिद्धान्तों का उल्लंघन किये बिना उन रामचन्द्र ने जिनके चरण-कमलों की पूजा  
भक्तगण ध्यान में करते हैं, जब तक चाहा, दिव्य आनन्द की सारी सामग्री का भोग किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत “भगवान् रामचन्द्र का विश्व पर राज्य करना”  
नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।